ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

जस्सा सिंह आहलूवालिया और जाट

सिक्ख इतिहास, भाग-दूसरा

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी जगत गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

Websie:www.sikhworld.info

or

Websie:www.sikhhistory.in

नोट : यहां दी गई सारी जानकारी लेखक के अपने निजी विचार हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लेखक के विचारों से सहमत हों।

जस्सा सिंह आहलूवालिया और जाट

दिसम्बर, 1764 ईस्वी तथा फरवरी, 1765 में मध्यवर्ती समय में नजीबुद्दौला का विरोध करने के लिए सरदार जस्सा सिंह आहलुवालिया ने भरतपुर नरेश जवाहर सिंह को सहायता प्रदान की थी। इस घटना का विवरण पिछले अध्यायों में आ चुका है। जनवरी, 1766 में जवाहर सिंह ने फिर एक बार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी से सहायता की याचना की, किन्तु इस बार जवाहर सिंह की टक्कर मराठों से थी, जो भरतपुर के क्षेत्र में लूटपाट करने पर तुले हुए थे।

सिक्खों ने जवाहर सिंह को सहायता प्रदान करने के लिए स्वीकृति दे दी। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ने शाम सिंह, भाग सिंह, गैबा डेलेवालिया तथा अन्य कुछ सिक्ख सरदारों के साथ 25 हजार घुड़सवार सेना लेकर रियासत जयपुर के रिवाड़ी नगर पर अधिकार कर लिया। इसके कुछ समय बाद कोट पुतली शहर की ईट से ईट बजा दी गई। उस समय जयपुर का बख्शी दुला राय और खाल-ए समान जयचन्द कन्नौड़ गए हुए थे। सिक्खों ने सभी आठों मार्ग रोक लिए। माधो सिंह में सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी से टक्कर लेने का साहस न था जिसके कारण वह घबरा गया।

वास्तव में जस्सा सिंह जी ने एक विशेष रणनीति के अन्तर्गत जयपुर पर आक्रमण किया था कि जब मराठे अपने मित्र माधो सिंह की सहायता के लिए आएंगे तो सम्भवत: उनका ध्यान भरपुर के क्षेत्रों से हट जाएगा। जाविता खान (धर्म सिंह) भी इस संदर्भ में आहलूवालिया जी से सहमत था, इसलिए दोनों पक्षों की सेनाओं ने मिलकर जयपुर नगर को परास्त कर दिया। इस पर माधो सिंह ने लाचार होकर कहा, हमारे पूर्वजों की आसाम के युद्ध में श्री गुरू तेग बहादुर साहब जी ने सहायता की थी। अत: हम सिक्ख हैं, ऐतिहासिक घटना की गुहार लगाकर सिक्खों से क्षमा याचना माँगते हुए संधि का प्रस्ताव रखा। जिसे सरदार जस्सा सिंह जी ने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

बदली हुई परिस्थितियों को ध्यान में रख कर जवाहर सिंह ने नवल सिंह को मध्यस्थ बनाकर राजामाधो सिंह से संधि कर ली।

वहाँ से दल खालसा, राजा जवाहर सिंह के साथ राजा गोहट की सहायता के लिए सन्, 1766 ईस्वी के मार्च महीने में जा पहुँचे। राणा गोहट एक जाट था और इसी कारण जवाहर सिंह ने मराठों के विरूद्ध उसकी सहायता करने का वचन दिया था।

भरतपुर का राजा बनने का दावा करने वाला, जवाहर सिंह का भाई नाहर सिंह मराठों से मिला हुआ था। नाहर सिंह की शह पर मराठा सरदार होलकर ने अपने प्रतिष्ठित सेनापतियों के नेतृत्त्व में 15,000 मराठा घुड़सवारों को गोहट के क्षेत्र में भेज दिया था। इन सैनिकों ने धौलपुर से लेकर डीघ और आगरे की चार दीवारी तक के सभी जाट गाँवों को उजाड़ दिया था। तब सात हजार सिक्ख सैनिकों के साथ लेकर राजा जवाहर सिंह अपनी प्रजा की सहायता के लिए पहुँच गया और उसने 13 मार्च को धौलपुर के निकट मराठों को जा ललकारा।

सिक्खों के दाँवपेच के सामने मराठों की दाल गलने न पाई। जब मराठे लड़ने के लिए आये तो सिक्ख पीछे हट गये। मराठों ने समझा कि सिक्ख डर कर भाग गए हैं, किन्तु सिक्ख अपने सुनियोजित स्थान पर थे। जब मराठे और आगे बढ़े तो सिक्ख एकदम मुड़ गए और उन्होंने दाएं बाएं।ओर से उन्हें घेरकर बंदूकों से आक्रमण कर दिया। बीच से जाटों ने भी मराठों को गोलियों से भून डाला। बेबस होकर मराठा सैनिकों ने धोलपुर के किले में शरण ले ली किन्तु सिक्ख उनके पीछे ही भागते हुए किले में घुस गए। कुछ ही झड़पों के बाद सिक्खों ने किले पर अधिकार कर लिया और बहुत से मराठों सेनापतियों को बन्दी बना लिया।

राजा जवाहर सिंह का मन था कि चंबल नदी पार करके मलहार राव 'मराठे' को भी मजा चखवाया जाए किन्तु जस्सा सिंह आहलूवालिया और उसके साथी अमृतसर पहुँच कर वैशाखी पर्व मनाने के लिए उतावले थे। जवाहर सिंह ने उन्हें बड़े सम्मानपूर्वक विदा कर दिया। दल खालसा की इस कार्यवाही से जाट, सिक्खों का अत्यन्त आदर करने लगे और इस बात की चर्चा मराठों में भी होने लगी।

करतारपुर के सोढ़ियों की सिक्ख पंथ में पुनर्स्थापना

मीने (पृथीचन्द की संतान) और मसंदो (पुजारी वर्ग) की भान्ति करतारपुर के शेखीखोर सोढी बाबा धीरमल के अनुयायियों के साथ भी सिक्खों ने सामाजिक दृष्टि से

सम्बन्ध विच्छेद कर रखा था। धीरमल के परिवार से रोटी – बेटी का सम्बन्ध अथवा किसी भी प्रकार का लेन – देन गुरूपंथ के आदेशों का उल्लंघन माना जाता था।

करतारपुर का सिंहासनारूढ़ सोढ़ी बड़भाग सिंह तो पहले ही अमृत छक कर खालसा पंथ का अंग बन चुका था किन्तु उसके वंशज गुलाब सिंह ने अभी तक अमृत नहीं छका था, फिर भी गुलाब सिंह को सिक्खों की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा के कारण यह आभास होने लगा था कि अब उसका अलग – थलग रहना उचित न होगा, इसलिए गुलाब सिंह ने कंवर भाग सिंह से प्रार्थना की कि वह करतारपुर में दर्शन देकर उसका आतिथ्य स्वीकार करे। भाग सिंह ने सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया से परामर्श किया। आहलूवालिया जी ने अन्य सरदारों की सहमति लेकर गुलाब सिंह को यह संदेश भिजवाया कि अमृत छकने के अतिरिक्त सिक्ख पंथ में सम्मिलित होने का और कोई उपाय नहीं है।

गुलाब सिंह ने यह शर्त स्वीकार कर ली। इसके फलस्वरूप जस्सा सिंह आहलूवालिया, टिक्का, भाग सिंह और अन्य सरदार करतारपुर पहुँच गए। एक विशाल दीवान सजाया गया, जिसमें उन्हें अमृत छकाया गया। वहीं पर यह घोषणा भी की गई कि क्योंकि सरदार गुलाब सिंह ने अमृत धारण कर लिया है। अत: वे गुरू के सेवक बन गए हैं। अब उन्हें पूर्व की तरह खालसा पंथ में अभेद (अटूट अंग) माना जाएगा। 'खालसा' इन से अब पुन: सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

रामगढ़ियों से मतभेद

सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी के जीवन के अन्तिम दिनों में एक दु:खान्त घटित हुआ, जिस से उनका जस्सा सिंह रामगढ़िया उनके भाइयों से मतभेद हो गया। एक बार सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी बटाला से लगभग दो कोस दक्षिण में अचल की तरफ जा रहे थे, यहाँ फाल्गुन शुदि चर्तुदशी को मेला लगना था। जब वह गुरदासपुर के निकट पहुँचे तो सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया के भाइयों, खुशहाल सिंह, माली सिंह और भाग सिंह ने उन पर आक्रमण करके उन्हें बंदी बना लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी अकेले ही थे।

इन रामगढ़िया भाइयों का जस्सा सिंह के साथ एक पुराना मन मुटाव चला आ रहा था। जिसका शायद बड़ा कारण यह था कि कसूर नगर की लूट के समय मिसलों के रिवाज के विपरीत माली सिंह रामगढ़िया ने लूट का सारा माल हथिया लिया था और कन्हैया मिसल को उसमें से कोई भाग नहीं दिया था। कन्हैया मिसल के जय सिंह के रोष प्रकट करने पर जस्सा सिंह रामगढ़िया ने अपने भाई माली सिंह को समझाया – बुझाया भी, परन्तु वह नहीं माना। इस पर यह शिकायत दल खालसा के अध्यक्ष सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी के पास पहुँची। उन्होंने दल खालसा की ओर से माली सिंह पर दबाव डाला कि वह लूट के माल का बँटवारा उचित ढँग से करे परन्तु माली सिंह टस से मस न हुआ। इस बात को लेकर आपसी मतभेद उत्पन्न हो गया था।

जब जस्सा सिंह रामगढ़िया को इस घटना की सूचना मिली तो उन्होंने सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी को सिरोपा, घोड़ा और पालकी भेंट करके विदा किया। भले ही सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने दूरदर्शिता के कारण स्थिति को सम्भाल लिया था, फिर भी मन की मैल पूरी तरह नहीं उतरी।

यह घृणा धीरे धीरे बढ़ती गई। आहलूवालिया, कन्हैया और रामगढ़िया सरदारों के बीच खुले आम झड़पें होने लगी। फलत: रामगढ़िया सरदार अपने रिआडकी तथा दुआबा के क्षेत्रों को छोड़ने के लिए विवश हो गये और कुछ समय तक महाराजा पटियाला के पास आश्रित रहे।

दल खालसा के अध्यक्ष सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी का देहान्त

सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी प्रत्येक दीवाली और वैशाखी के शुभ अवसर पर दरबार साहब के दर्शन स्नानार्थ अवश्य ही जाया करते थे क्योंकि उस दिन वहाँ पर अक्सर 'सरबत खालसा' सम्मेलन का आयोजन किया जाता था। एकत्रित संगत में पिछली छ:माही के कारनामों अथवा गतिविधियों का ब्यौरा दिया जाता था और आगामी छ: मास के लिए कार्यक्रम तैयार किये जाते थे।

सन् 1783 ईस्वी तदानुसार संवत 1840 विक्रमी की कार्तिक मास में सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी दीवाली मनाने के लिए फतेहाबाद की ओर प्रस्थान कर रहे थे। रास्ता लम्बा होने के कारण उन्होंने सुंडाला नामक ग्राम में विश्राम किया। वहाँ उन्होंने कुछ तरबूज खा लिए। उन्हें रास्ते भर पेट - दर्द होता रहा। अमृतसर पहुँचने तक यह उदर पीड़ा इतनी बढ़ गई थी कि वह निढ़ाल हो गये। बहुत से उपचारों के बावजूद जब आहलूवालिया जी की हालत में कोई सुधार न हुआ तो उनके अंतरंग महानुभावों ने सभी सरदारों को बुलाकर कहा कि अब इनका अन्तिम समय समीप आ गया है। अब इनका ध्यान किसी ओर आकृष्ट न किया जाए, कोई भी दुनियादारी की बात इनके कानों तक न पहुँचे। सारा समय गुरवाणी पढ़ने और सुनने में लगाया जाए।

संयोगवश सभी सरदार दीवाली के शुभ अवसर पर अमृतसर में एकत्रित थे। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी ने उन्हें सम्बोधन किया कि 'आप सब ने मुझे बहुत प्यार दिया है। मेरे जैसे नाचीज (तुच्छ व्यक्ति) को पातशाह (बादशाह) बनाया, यह पंथ की गरीब - निवाजी है। मेरी एक ही विनती है कि कोई भी स्त्री पुरूष मेरे शव के साथ आँसू न बहाए। सभी लोग 'वाहेगुरू! वाहेगुरू! ही कहते जाएँ। अन्तिम सँस्कार नवाब कपूर सिंह जी की समाधि के समीप बाबा अटल साहब जी के भवन के निकट ही करना।'

सभी सिक्ख सरदारों ने उन्हें वैसा ही करने का भरोसा दिलवाया। इस प्रकार 20 अक्तूबर, 1783 ईस्वी को उनका देहावसान हो गया।

कौम ने सरदार साहब के अन्तिम आदेश का पूर्णत: पालन किया। सभी सरदारों और श्रद्धालुजनों ने केवल पुष्प वर्षा करके श्रद्धाजंलि अर्पित की और किसी ने भी आँसू नहीं बहने दिये किन्तु अंत्येष्टि के बाद कोई भी व्यक्ति विरह के कारण अपनी अश्रुधारा को रोक न सका, मानों सद्भावनाएं अश्रुओं का अथाह सागर बन कर उमड़ आया हो। सभी लोगों के मुख पर एक ही बात थी - श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के द्वारा लगाए गए बाग 'खालसा पंथ' को बाबा बंदा सिंह और कपूर सिंह जी के बाद इन्होंने (सरदार जस्सा सिंह) इस प्रकार हरा - भरा किया है कि इसकी सुगन्ध पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक फैल गई है।

इस प्रकार पँजाब का महान सपूत, सृजनात्मक प्रतिभा के स्वामी, महान योद्धा, अद्वितीय शासक और सिक्ख आदर्शों का संरक्षक, पँजाब को विदेशी शासन से मुक्ति दिलवा कर अकाल पुरख - वाहे गुरू की गोद में जा विराजमान हुआ।

एकमात्र बुड्ढा सरदार, जत्थेदार श्याम सिंह

यह वह समय था जब सभी पुराने जत्थेदार शहीद हो चुके थे अथवा स्वर्गवास हो चुके थे। केवल सरदार श्याम सिंह नारलेवाला जीवित थे। इसने बंदा सिंह बहादुर का चड्ढ़ीकला वाला समय भी देखा था और उसके बाद जो कठिनाइयाँ सिक्ख पंथ पर आई थी, वे सब इन्होंने अपने तन पर झेली थी। सरदार श्याम सिंह दस बारह हज़ार सिक्ख जवानों की सेना का नेतृत्त्व करते थे। इन्होंने सिक्खों का दृढ़ निश्चय एवँ अडोलता देखी थी और फिर अपनी आँखों से मुगलों का राज्य नष्ट होते हुए भी देखा। डेढ़ लाख खालसे में से 40,000 घुड़सवार सिक्ख जवानों ने दिल्ली पर आक्रमण किया, जिनका जत्थेदार इनकी मिसल का सरदार बघेल सिंह चुमालिया था। खालसे ने दिल्ली पर कब्जा किया और काशगंज तक सारे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। यहीं बस नहीं चन्दोली तक चले गये परन्तु किसी ने सामना न किया। प्रत्येक नज़राना लेकर उपस्थित होता रहा। यह सब कुछ सरदार श्याम सिंह ने अपनी आँखों से देख लिया और अन्त में वह सन् 1777 ईस्वी में बिंझलपुर में दल खालसों को अलविदा कहकर गुरूपुरी जा विराजे।

इस प्रश्न का उत्तर कि मुसीबत के समय खालसे का कर्त्तव्य क्या होता है ?सरदार श्याम सिंह का जीवन ही स्पष्टीकरण कर रहा है। खालसा मुसीबतों से कभी डरा नहीं, मुसीबत के समय खालसे का दिल कभी डोला नहीं। हजारों सिक्ख शहीद करवा कर भी खालसा अडोल, अविचलित रहा, खालसे का निश्चय है कि मुसीबत आती है और चली भी जाती है परन्तु जो सच्चे आदर्श का सहारा लेकर इस कठिनाई को झेल लेते हैं, वे अपने मनोरथ में अवश्य कामयाब होते हैं। सिक्ख इतिहास बताता है कि किसी वस्तु की प्राप्ति कुर्बानी के बिना नहीं होती और कुर्बानी जितनी बड़ी होगी, इसके बाद सफलता भी उतनी ही शानदार होगी ।

सिक्ख का जीवन सब से पहले धार्मिक जीवन है और पारिवारिक अथवा व्यवहारिक जीवन इसके बाद में है। कोई लालच, रौब या भय सिक्ख को अपने धार्मिक जीवन से उन्मुख नहीं कर सकता, सिक्खों का यह निश्चय है कि धर्म हेतु जितने कष्ट सहन किए जाएं उतना

ही उनका भाग्य अच्छा है। सिक्ख की सबसे बड़ी लालसा सतगुरू के चरणों में स्थान प्राप्त करने की है और यह सिक्खों का निश्चय है कि धर्म की खातिर दु:ख सहन करने से सतगुरू के चरणों की समीपता शीघ्र प्राप्त होती है। यहाँ तक कि जो सिक्ख धर्म हेतु शीश बलिदान करते हैं, वे सीधे ही सतगुरू के दरबार में पहुँच जाते हैं।

सिक्खों का स्वर्ग का लालच नहीं सिक्खों का मोक्ष का लालच नहीं, लालच है तो केवल यह कि इस शरीर को छोड़ कर सतगुरू जी के चरणों में निवास मिले। सिक्ख इसी के लिए नितनेम करता है, धर्म की कमाई करता है, बाँट कर खाता और वाहे गुरू को प्रत्यक्ष सर्वव्यापक मानकर इस दुनिया में अनेक कुकर्मों से बचता है। इतना कुछ करने के उपरान्त भी सिक्ख यह नहीं समझता कि मैं अवश्य ही सतगुरू जी के दरबार में पहुँच सकूंगा अपितु उसका निश्चय है कि –

लेखै कतहि न छुटीऐ, खिनु खिनु भूलनहार

बखशनहार बख्श लै, नानक पारि उतार ।

वास्तव में प्रत्येक सिक्ख की मान्यता है कि गुरू जिस पर रीझता है, वह उस से सेवा लेता है अर्थात उसकी परीक्षा लेता है और उसे कठिन कार्य त्याग और बलिदान के कर्म सौंप देता है, जो दृढ़ता से धर्म के लिए दु:ख सहन कर लेता है और विचललित नहीं होता, वह सिक्ख सीधे ही गुरू दरबार में पहुँच जाता है। प्रत्येक सिक्ख की आँखों के सामने आवागमन से राहत, अमर जीवन का दृश्य दृष्टिगोचर होता है।

इस दरबार (आध्यात्मिक दुनिया) में हर कोई नहीं पहुँच सकता। इस मानव समाज में रह कर कोई व्यक्ति पूर्ण पुरूष नहीं बन सकता। वहाँ सम्पूर्ण हुए बिना प्रवेश नहीं मिल सकता परन्तु एक युक्ति सहज है, वह यह है कि परोपकार के लिए अथवा अत्याचारों के विरोध में संघर्षरत होकर आत्म बलिदान कुर्बानी देना, यह कार्य उस दरबार में सीधा प्रवेश दिलवाता है। इस सहज मार्ग को सिक्ख अपनाने के लिए व्याकुल रहते हैं और प्रत्येक क्षण किसी ऐसे अवसर की तलाश में रहते हैं, जहां उन्हें अपने प्राणों की आहुति देकर कोई धर्मार्थ कार्य की सिद्धि की आशा हो।

शायद यही कारण है कि सिक्ख इतिहास में शहीदों की कतारें लगी हुई हैं, क्योंकि इन शहीदों का लक्ष्य गुरू दरबार में प्रवेश इस सहज मार्ग से प्राप्त करना रहा है।

तभी तो सिक्ख, धर्म हेतु बलिदान करने के समय का व्याकुलता से प्रतीक्षा करता रहता है और जब उसे कोई ऐसा अवसर मिल जाता है तो उसे मुँह मांगी मुराद समझ कर बहुत चाव के साथ गले लगाता है। ऐसी स्थिति में वह हानि लाभ का विचार नहीं करता और न ही भूत भविष्य की सोचता है। प्रत्येक सिक्ख की यही एक इच्छा होती है कि सबसे पहले उसकी बारी आए और उसका शीश उतरे जो वह गुरू चरणों में भेंट कर सके। उसे यह दुनिया नज़र नहीं आती। उसे सतगुरू का दरबार दिखाई देता है। वह इस दरबार में पहुँचने को उत्सुक रहता है, इसलिए वह सबसे पहले सिर न्यौछावर करने को लालायित दिखाई देता है ।

गुरमता व केन्द्रीय सिक्ख संगठन

श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के पश्चात् मानवी गुरूओं का क्रम समाप्त हो गया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व को खालसा पंथ में मिला दिया। अब खालसा पंथ ही गुरू का स्वरूप बन गया। जिन नियमों को गुरूदेव जी स्वयं निभाते थे, अब सारी खालसा जाति या खालसा पंथ ही निभाने लगा। श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के ज्योति विलीन होने के बहुत समय पश्चात् जब सिक्खों ने फिर से शक्ति पकड़ी तो सारे सिक्ख सरदार प्राय: वैशाखी और दीवाली के अवसरों पर अमृतसर एकत्रित होते और सारी सिक्ख कौम (सम्प्रदाय) के सम्बन्ध में आगामी कार्यक्रम विचारते। जो निर्णय वे करते वह सभी प्रस्ताव गुरूमता कहलाता। इस प्रकार उसे व्यवहारिक रूप देने के लिए सभी मिलकर प्रयास करते ।

गुरमता दो पँजाबी शब्दों से बना है 'गुरू और मत'। गुरू के अर्थ हैं आध्यात्मिक या धार्मिक नेता और मता का अर्थ है गुरू का आदेश अथवा उनके विचारों का अध्यादेश। जैसा कि पहले वर्णन किया गया है कि दूर प्रदेशों से श्रद्धालु सिक्ख प्राय: दीवाली, वैशाखी अथवा गुरूपर्वों पर ही आते और श्री अकाल तख्त के समक्ष गुरू गद्दी पर विराजमान गुरू ग्रंथ साहब के सम्मुख होकर समस्त सिक्ख समुदाय के बारे में आगामी कार्यक्रम पर विचारविमर्श करते। सिक्ख समुदाय के इन सारे होने वाले अधिवेशनों को 'सरबत खालसा' कहा जाने लगा और

'सरबत खालसा' के निर्णयों को प्रस्ताव अथवा गुरूमता का नाम दिया गया। धीरे धीरे यही गुरमता एक दृढ़ सम्प्रदायिक सँस्था के रूप में परिणत हो गया। ये निर्णय या प्रस्ताव जो कि श्री गुरू ग्रन्थ साहब के समक्ष पारित किये जाते थे, गुरूमता कहलाने लगे।

गुरूमता का सबसे प्रथम कर्त्तव्य सिक्ख मिस्लों के या दल खालसा के नेता का चुनाव करना था। यह चुनाव बहुमत के आधार पर होता। सारी सिक्ख सेना का नाम 'दल खालसा' था। सामाजिक जीवन में सारे सिक्ख समान थे। सरबत खालसा के अधिवेशन में हर व्यक्ति को अपना मत देने का अधिकार था। सारे निर्णय बहुमत से हुआ करते थे। 'सरबत खालसा' अपने संयुक्त शत्रु के विरूद्ध सेनाएं भेजने के सम्बन्ध में सोचविचार करता। कभी कभी वे परस्पर मिला करते और सिक्ख धर्म के प्रचार के लिए उपाय सोचते। कभी वे विभिन्न सिक्ख सरदारों के झगड़ों और निजी द्वेषों को समाप्त करने के सम्बन्ध में भी सोचते। गुरूमता न्याय का काम भी करता और सरदारों की परस्पर सम्पत्ति और पैतृक अधिकारों के झगड़ों का निर्णय भी किया करता। जब सिक्ख आपसमें मिलते तो सामूहिक समाज में अपने निजी द्वेषों को भूल जाते। सरबत खालसा का प्रथम अधिवेशन गुरू गोबिन्द सिंह जी ने बुलाया था और अन्तिम अधिवेशन महाराजा रणजीत सिंह ने सन् 1805 ईस्वी में बुलाया था।

जब सिक्ख सरदार अमृतसर में कुछ एक धार्मिक अवसरों पर परस्पर मिलते तो यही समझा जाता कि उनमें आपसी झगड़े और मतभेद बिल्कुल हैं ही नहीं और प्रत्येक सरदार अपने अपने स्वार्थों तथा लक्ष्यों को समस्त सिक्ख सम्प्रदाय पर न्योछावर करने को तत्पर हैं। दूसरे शब्दों में वे देशभक्ति की भावनाओं में मग्न होकर अपनी धार्मिक भलाई और सरबत खालसा की भलाई के अतिरिक्त और किसी चीज़ का विचार न करते थे।

जब बड़े बड़े सिक्ख सरदार और मिस्लदार गुरू ग्रन्थ साहब अथवा दसवीं पातशाही के समक्ष एकत्रित होते तो कहते, 'वाह गुरू जी का खालसा, वाह गुरू जी की फतेह'। इसके बाद सभी उपस्थितगण प्रार्थना (अरदास) करके अपने अपने स्थान पर बैठ जाते। बाद में 'कड़ाह प्रसाद' बांटा जाता और सब लोग उसे खाते जिससे पता चलता कि वे सब एक ही हैं और उनमें पूर्ण एकता और संगठन है। ग्रन्थी सिंह अथवा मुख्य सेवादार उठकर गुरूमते का प्रस्ताव सभी आये हुए गणमान्य व्यक्तियों के सुझावों के अनुसार तैयार करता और फिर इस प्रस्ताव पर समस्त सिक्ख विचार विमर्श करते, अन्त में इस प्रस्ताव के पक्ष में अथवा संशोधन

के लिए निर्णय मांगे जाते, तत्पश्चात एक सुधरा हुआ स्वरूप तैयार कर लिया जाता, उसकी स्वीकृति के लिए दोबारा श्री गुरू ग्रन्थ साहब के समक्ष प्रार्थना की जाती, उसके पश्चात् 'गुरूमता' मुख्य सेवादार पढ़कर समस्त संगत को सुनाता जो समस्त सिक्ख जगत के लिए अनिवार्य मान्य होता। इस पर सभी सिक्ख सरदार एक स्वर से कहते, श्री गुरू ग्रन्थ साहब हमारे इष्टदेव हैं, वही हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, अत: यह गुरूमता उनके आदेश जानकर हम शपथ लेते हैं कि हम आपसी लड़ाइयां, ईर्ष्या, द्वेष दूर करेंगे और संगठित होकर खालसा पंथ की भलाई के लिए कार्य करेंगे।

महाराजा रणजीत सिंह (शेरे-ए-पंजाब)

आप पिछले अध्यायों में महासिंह शुक्रचकिया मिस्ल और उसके प्रचार के विषय में विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। जैसे कि हम पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं, सरदार चढ़त सिंह के कालवास के समय सरदार महासिंह की आयु मुश्किल से 14 वर्ष की ही थी, परन्तु इन्होंने मिस्ल की सरदारी का कार्य बड़ी योग्यता से निभाया। इन्होंने भी बहुत से युद्ध किये और बहुत बड़े क्षेत्र को विजय करके अपनी मिस्ल में मिला कर उसका क्षेत्रफल बढ़ाया। एक बार वह रणक्षेत्र में ही बीमार हो गये और अपनी सेना की कमान अपने बारह वर्षीय पुत्र रणजीत सिंह को सौंप कर अपने घर गुजरांवाले लौट आये। वहीं पर सन् 1792 ईस्वी में उनका देहावसान हो गया।

रणजीत सिंह का जन्म तथा बाल्यकाल

महाराजा रणजीत सिंह का जन्म 13 नवम्बर 1780 ईस्वी तदानुसार 2 मघर संवत् 1837 को हुआ। इनकी माता ने इनका नाम बुद्ध सिंह रखा। इनके पिता सरदार महासिंह को इनके जन्म की सूचना उस समय मिली जब वे रण में से विजयी होकर घर लौट रहे थे। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र का नाम रणजीत सिंह रखा। यही नाम बाद में प्रसिद्धि प्राप्त कर गया।

सरदार महासिंह जी ने अपने इकलौते बेटे की धार्मिक शिक्षा के लिए सरकारी धर्मशाला के ग्रंथी को नियुक्त किया। साथ ही घुड़सवारी, तैराकी, शस्त्र विद्या आदि शारीरिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी किया। रणजीत सिंह को शस्त्र विद्या से बहुत लगाव था। अत: अल्प आयु में ही उन्होंने इन दोनों में निपुणता प्राप्त कर ली ।वे बिना किसी थकान के दिन भर घोड़े की सवारी कर सकते थे। तलवार ऐसी स्फूर्ति से चलाते कि बड़े बड़े योद्धाओं को आश्चर्यचकित कर देते। रणजीत सिंह जी बाल्यकाल से ही अपने पिता जी के साथ रणभूमि में जाने लग गये। एक युद्ध के समय एक पठान ने अक्स्मात् उन पर वार कर दिया। उनकी आयु उस समय कठिनता से 10 वर्ष की थी। वह लेशमात्र भी भयभीत न हुए बल्कि उन्होंने उत्तर में तलवार के एक ही वार से उस पठान का सिर कलम कर के धर दिया। रणजीत सिंह का यह करामाती करतब देखकर सरदार महासिंह तथा उनकी फौज ने अति प्रसन्नता व्यक्त की। जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि इनके पिता सरदार महासिंह एक युद्ध में अकस्मात् बीमार हो गये थे और फौज की कमान अपने पुत्र को सौंप कर गुजरांवाले आ गये थे। सरदार रणजीत सिंह ने यह कार्य पूर्ण योग्यता से निभाया और युद्ध में विजय प्राप्त की। कालवास से पूर्व सरदार महासिंह को इस विजय की सूचना प्राप्त हो गई, इस पर वह बहुत प्रसन्नत हुए। उनको विश्वास हो गया कि उनके पश्चात् उनका पुत्र अपने पिता – पितामह के पद – चिन्हों पर चल कर राजकाज को बढ़ायेगा।

सरदार महासिंह जी की मृत्यु सन् 1792 ईस्वी में हो गई। उस समय रणजीत सिंह की आयु बारह वर्ष की थी। बारह वर्ष की आयु में रणजीत सिंह अपने पिता जी की गद्दी पर बैठे और शुक्रचकिया मिस्ल के सरदार बने। रणजीत सिंह की माता राजकौर, जींद राज्य के सरदार गजपति सिंह की कन्या थी। एक बार रणजीत सिंह को चेचक रोग हो गया। इस रोग ने उनकी एक आँख ले ली और उनका जीवन कई दिन तक तो खतरे में रहा। अन्त में वह स्वस्थ तो हो गये परन्तु उनके चेहरे पर चेचक के दाग रह गये। रणजीत सिंह छोटे कद के थे परन्तु थे बहुत फुर्तीले और चुस्त। रणजीत सिंह की कम आयु के कारण राज्य का कार्यभार उनके पिता के अहिलकार सरदार दल सिंह तथा दीवान लखपत राय, माता राजकौर के आदेशों अनुसार चलाते रहे। जब रणजीत सिंह 18 वर्ष के हुए तो इनकी माता का देहावसान हो गया। इस पर राज्य का कार्यभार उन्होंने स्वयं सम्भाल लिया।

रणजीत सिंह का विवाह बचपन में ही नक्कई मिस्ल की एक कन्या राजकौर से हो गया था। इतिफाक से इनकी माता का नाम भी राजकौर ही था। अत: उन्होंने अपनी पत्नि राजकौर का नाम बदल कर दातार कौर रख दिया। परन्तु युवावस्था में जब वह सर्वगुण सम्पन्न हो चुके थे तो उनका एक और विवाह बड़ी धूमधाम के साथ सन् 1796 ईस्वी में कन्हैया मिसल के सरदार जयसिंह के स्वर्गीय पुत्र गुरूबख्श सिंह की कन्या महताबकौर से हुआ। इस प्रकार रणजीत सिंह की बड़ी पत्नी दातार कौर थी, जिसे वह बहुत अधिक चाहता था। अत: महताबकौर का दर्जा दातारकौर से नि:सन्देह कम था। रणजीत सिंह की सफलता बहुत कुछ रानी सदाकौर की उस सहायता के बल पर आधारित थी, जो उसने उसे सेना और धन आदि के रूप में दी थी। वास्तव में रणजीत सिंह और महताब कौर के विवाह के बाद शुक्रचकिया मिस्ल और कन्हैया मिस्ल मिलकर एक हो गई। इस प्रकार इन दोनों मिस्लों की सम्मिलित शक्ति रणजीत सिंह को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुई।

जब रणजीत सिंह अपनी आयु के 17वें वर्ष में प्रविष्ट हुआ तो उसने अपनी शक्ति का अनुभव करते हुए राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। ऐसे में उसकी सास रानी सदाकौर उसके साथ उसकी सहायता के लिए खड़ी थी। रणजीत सिंह ने राजगद्दी सम्भालने पर देखा कि पँजाब का अधिकतर हिस्सा सिक्खों की बारह मिस्लों के अधिकार में है जो कि अपनी अपनी जगह पर स्वतन्त्र थे और गुट बना बना कर या इक्का – दुक्का होकर आपस में लड़ते रहते थे। कुछ भाग मुलतान, कसूर आदि परदेसी मुसलमानों के अधीन था। महाराजा रणजीत सिंह को पँजाब का यह बँटवारा तथा घरेलू लड़ाइयां अच्छी न लगी। इनके मन में विचार आया कि इस फूट तथा स्वार्थपरता की भावना को मिटा कर सारे पँजाब में ऐसा राज्य कायम किया जाये जिसमें पूर्ण शान्ति, एकता तथा खुशहाली हो। इन्होंने आरम्भ से यह ध्येय अपने आगे रखा और इस आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने प्रारम्भ कर दिये।

सर्वप्रथम कन्हैयामिस्ल की रानी सदाकौर को इनकी सहायता की आवश्यकता पड़ गई। उस समय सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने कन्हैया मिस्ल के क्षेत्र में अपना अधिकार करना शुरू कर दिया था। ऐसे में रणजीत सिंह सास की सहायता के लिए सेना लेकर बटाला नगर पहुँचा। जाते हुए वह दो दिन लाहौर ठहरा। लाहौर नगर उस समय भंगी मिस्ल के सरदारों के हाथ में था। उस समय उसने लाहौर का किला देखा। इस प्रकार उसके मन में लाहौर नगर

और उसके किले पर अधिकार करने की इच्छा उत्पन्न हो गई क्योंकि ऐसा किये बिना सभी पँजाबी शक्तियों को एकत्रित करके एक झंडे के नीचे लाना असम्भव था ।

शाहज़मान के आक्रमण

अहमद शाह अब्दाली का पोता शाहज़मान सन् 1783 ईस्वी में काबुल के सिंहासन पर बैठा। उसने भी अपने दादा की भान्ति हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने की नीति धारण कर ली। उसने पहला आक्रमण सन् 1787 ईस्वी में और दूसरा सन् 178 8 ईस्वी में किया परन्तु खालसा से हार खा कर घरेलू हालात के बिगड़ जाने के कारण पंजा साहब के क्षेत्र से वह आगे न बढ़ सका। तीसरा आक्रमण उसने सन् 1796 ईस्वी में किया। पंजा साहब पहुँच कर उसने मिस्लों के सरदारों के मुखी सरदार रणजीत सिंह शुक्रचकिया को पत्र लिखा कि वह अधीनता स्वीकार कर ले। उत्तर में रणजीत सिंह ने कहा – हम युद्ध के लिए तत्पर हैं। शाहज़मान विशाल सेना लेकर विजय के ढंके बजाता हुआ लाहौर तक पहुँच गया। उसने लाहौर नगर पर सहज में ही अधिकार कर लिया। शाहज़मान की विशाल सेना देखकर स्थानीय भंगी मिस्ल के सरदार उसका सामना न कर, लाहौर नगर के उसके रहमों – करम पर छोड़कर भाग गये। लाहौर पर कब्जा करके वह अमृतसर की तरफ बड़ा, जहाँ खालसा की फौजें एकत्रित थीं। वहाँ पर खूब डट कर खूनी लड़ाई हुई। वह संयुक्त खालसा फौजों का सामना करने में असमर्थ रहा। अत: पराजित होकर वापिस लाहौर चला गया ।

अब उसने कूटनीति का सहारा लेना उचित समझा। सर्वप्रथम उसने कई मिस्लदारों को पत्र लिखे कि वह उससे लाहौर की सूबेदारी स्वीकार कर ले परन्तु ऐसा किसी ने भी ने ना किया। तभी उसे काबुल से समाचार मिला कि उसके भाई ने कंधार नगर में बगावत कर दी है और वह काबुल की तरफ बढ़ रहा है। इस पर शाहज़मान ने तुरन्त वापिस लौटना उचित समझा। जाते हुए उसने पँजाब का प्रशासन हामीज़ शेर मुहम्मद खान को सौंप दिया। सिक्ख तो इसी अवसर की ताक में थे। उन्होंने समस्त क्षेत्रों पर पुन: अपना अधिकार स्थापित कर लिया और लाहौर की तरफ बढ़ चले। जल्दी ही सिक्खों ने उसके द्वारा स्थापित राज्यपालों को मार भगाया। भंगी मिस्ल के सरदारों ने लाहौर पर पुन: कब्जा कर लिया ।

दो वर्ष के अन्तराल में शाहज़मान ने भारत पर चौथा आक्रमण सन् 1798 ईस्वी में कर दिया। इस बार सिक्खों ने फिर से उसे अपनी पुरानी नीति के अन्तर्गत लाहौर तक आने दिया। कहीं कोई आमना-सामना न किया। इसलिए शाहज़मान बहुत चकित हुआ। उसे झूठा विश्वास दिलवाया गया कि आपकी शक्ति को ध्यान में रखकर सिक्ख भयभीत होकर भाग गये हैं। तभी सरदार रणजीत सिंह तथा अन्य सरदारों ने संयुक्त रूप से लाहौर पर आक्रमण कर दिया। शाहज़मान को भारी क्षति उठानी पड़ी। वह भयभीत होकर किले में शरण लेकर बैठ गया। खालसा ने चारों तरफ से नाकेबंदी कर ली, रसद पानी के रास्ते रोक लिए और जितनी तंगी हो सकती थी, उसको दी। परन्तु शाहज़मान साहस बटोर कर बाहर निकल कर सामना करने का साहस न कर सका। कहा जाता है कि इस आक्रमण में अफगानों के विरूद्ध रणजीत सिंह ने वह साहस और वीरता दिखाई, जिसने शाहज़मान के मन पर गम्भीर प्रभाव डाला, क्योंकि रणजीत सिंह ने लाहौर के शाही दुर्ग के 'सामन' बुर्ज पर चढ़कर कई अफगान पहरेदार सैनिकों को मृत्यु के घाट उतारा था। भले ही शाहज़मान लाहौर नगर पर अधिकार करने में सफल हो गया किन्तु अभी उसे सिक्ख सैनिकों से लोहा लेना था तभी रणजीत सिंह ने उसे गर्ज कर 'सामन बुर्ज' से ललकारा और कहा -

'अहमद शाह के पोते, सरदार चढ़त सिंह का पोता तुझे मिलने आया है, आ निकल, यदि हिम्मत है तो रणक्षेत्र में मिल ले'

यह ललकार उसने तीन बार दी पर शाहज़मान ने आगे से चूं तक नहीं की। बाद में जल्दी ही तंग आकर वह अपने देश को वापिस चला गया ।

उस समय जेहलम नदी में अकस्मात् पानी चढ़ आया और शाहज़मान की बहुत सी तोपें नदी पार करते समय पानी में डूब गई। उस काल में लड़ाई के लिए तोपों का महत्त्व अधिक समझा जाता था, इसलिए शाहज़मान ने रणजीत सिंह को लिखा कि यदि वह उसकी सारी तोपें झेहलम नदी से निकाल कर काबुल भेज दें तो वह उसे इसके बदले में लाहौर का शासन स्वीकार कर लेगा तथा वह फिर भारत पर आक्रमण नहीं करेगा। रणजीत सिंह ने पन्द्रह तोपें नदी से निकाल कर शाहज़मान को काबुल भेज दी। इस पर प्रसन्न होकर शाहज़मान ने रणजीत सिंह को पँजाब का शासक स्वीकार कर लिया ।

शाहज़मान के वापिस जाने पर लाहौर पर भंगी मिस्ल के सरदारों ने अधिकार कर लिया। ये तीनों सरदार साहब सिंह, चेत सिंह तथा मोहर सिंह आपस में लड़ते – झगड़ते रहते थे। शहर का प्रबन्ध बहुत खराब था। प्रजा बहुत दुखी थी। शहर की रक्षा का कोई ख्याल नहीं करता था। इस दशा को देखकर कसूर के नवाब निजामद्दीन ने लाहौर पर आक्रमण कर दिया तथा अधिकार करने की नियत बना ली। लाहौर की जनता इन सरदारों के राज्य से दुखी तो जरूर था परन्तु कसूर क्षेत्र के नवाब को यह लोग इनसे भी बुरी आफत समझते थे। दूसरी ओर लाहौर की जनता ने सरदार रणजीत सिंह की शोभा सुनी हुई थी कि रणजीत सिंह की प्रजा सुख तथा अमन से बसती है, इसलिए उन्हें विश्वास था कि यदि लाहौर नगर का शासन रणजीत सिंह बन जाये तो शहर के भाग्य खुल जायेंगे। इस प्रकार शहर भी सुखी बसेगा और कसूर क्षेत्र के नवाब जैसे किसी व्यक्ति को इस पर आक्रमण करने का साहस भी न होगा। शहर के हिन्दू, मुसलमानों तथा सिक्ख मुखियों – हकीम हाकमराय, माहिर मुहकम दीन, मीआ मुहम्मद चाकर, मीआं मुहम्मद कहर, मीआं आशिक मुहम्मद, भाई गुरबख्श सिंह आदि लोगों ने रणजीत सिंह की सेवा में एक निवेदन पत्र लिख भेजा, जिसमें लाहौर नगर पर अधिकार करने के लिए उन्हें प्रेरित किया गया था ।

सरदार रणजीत सिंह तो पहले से ही यह सब कुछ चाहता था। फिर भी वह जल्दबाज़ी में काम नहीं करना चाहता था। उसने अपने एक विश्वसनीय व्यक्ति, काज़ी अब्दुल रहमान को, लाहौर नगर के सारे हालात की जांच पड़ताल करने के लिए भेजा और वह स्वयं अपनी सास सदा कौर के पास सलाह करने के लिए गये। रानी सदा कौर ने लाहौर पर कब्जा कर लेने के पक्ष में विचार दिया। इस कार्य के लिए वह स्वयं भी रणजीत सिंह का साथ देने के लिए तैयार हो गई। दोनों ने पच्चीस हज़ार सेना एकत्रित कर ली और लाहौर नगर की तरफ चल पड़े। लाहौर नगर के निकट पहुँच कर उन्होंने वज़ीर खान के बाग में जा डेरा लगाया ।

रणजीत सिंह ने सेना को दो भागों में बाँटा। एक हिस्से की कमान रानी सदाकौर ने सम्भाल ली और उसने दिल्ली दरवाज़े की तरफ से आक्रमण कर दिया। रणजीत सिंह ने लुहारी दरवाजे की तरफ से बढ़ना शुरू कर दिया। भंगी सरदार सामना न कर सके। भंगी सरदारों में से दो, साहब सिंह तथा मोहर सिंह नगर छोड़कर भाग गये और तीसरा चेत सिंह किले में घुस बैठा। ठीक उसी समय वायदे अनुसार माहिर मुहकमदीन के संकेत पर नगर के दरवाजें खोल दिये गये। अन्त में सरदार चेत सिंह भंगी भी किला खाली कर गया ।

इस प्रकार 7 जुलाई सन् 1799 (आषाढ़ शक्ल पक्ष, 5 सम्वत् 1856) को रणजीत सिंह ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। नगर निवासियों ने बहुत खुशी मनाई, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि न्यायकारी राज्य स्थापित हो गया है। अत: लाहौर नगर की प्रजा ने प्रभु का धन्यवाद किया और सुख की साँस ली ।

भंगी सरदारों में से सरदार चेत सिंह ने अधीनता स्वीकार कर ली। अत: उसके साथ दया का व्यवहार किया गया इसलिए उसे एक जागीर दे दी गई। दूसरे भंगी सरदारों ने जोध सिंह रामगढ़िये और कसूर क्षेत्र के नवाब नज़ामुद्दीन के साथ मिलकर लाहौर पर फिर से कब्जा करने की योजना बनाई। भसीन के मुकाम पर युद्ध हुआ। जिसमें रणजीत सिंह विजयी रहा। इस प्रकार 7 जुलाई, सन् 1799 ईस्वी को लाहौर नगर पर रणजीत सिंह ने अधिकार कर लिया।

भसीन क्षेत्र का युद्ध

जब अन्य मिस्ल के सरदारों को ज्ञात हुआ कि रणजीत सिंह ने लाहौर पर अधिकार कर लिया है तो एक गुट बनाकर रणजीत सिंह पर आक्रमण करने की योजना बनाने लगे। इन सरदारों में रामगढ़िया मिस्ल के जोध सिंह तथा भंगी मिस्ल के गुलाब सिंह मुख्य थे। इनके अतिरिक्त कसूर क्षेत्र का नवाब नजामुद्दीन भी इनमें सम्मिलित हो गया। ये सभी सेना लेकर भसीन रणक्षेत्र में पहुँचे। छोटी छोटी कई झड़पें प्रारम्भ हुई। इस बीच रानी सदाकौर ने अपने जंवाई रणजीत सिंह का साहस बढ़ाते हुए कहा – तुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं, जिस अकाल युद्ध ने तुझे लाहौर के तख्त पर बिठाया है, वही तुझे अन्त में विजयी बनायेगा। इस पर रणजीत सिंह ने कहा – वह तो ठीक है परन्तु इस समय खजाना बिल्कुल खाली पड़ा हुआ है, युद्ध किस बल पर लड़ा जाएगा। तभी एक 80 वर्ष का वृद्ध मुगल पुरूष रणजीत सिंह के सामने लाया गया, उसने रणजीत सिंह से कहा, मैं आपकी शासन व्यवस्था से अति प्रसन्न हुआ, इसलिए आपको एक भेद की बात बताना चाहता हूँ, परन्तु आप वायदा करें कि मुझे भी आप सन्तुष्ट करेंगे। रणजीत सिंह तो बहुत उदार पुरूष थे, उसने लाभ होने की स्थिति में वृद्ध पुरूष को उसमें से हिस्सा देने का वचन दिया। इस पर उस वृद्ध ने कहा कि मैं

राजमिस्त्री हूँ, बहुत समय पहले नादिरशाह के आक्रमण के दिनों में धन को छिपाकर रखने के लिए एक विशेष तहखाना बनवाया गया था, जिसमें हमने विशाल धनराशि भूमि में गाढ़ दी थी, उसका मैं आपको पता बता सकता हूँ। रणजीत सिंह ने वृद्ध की सहायता से वह धन प्राप्त कर लिया। जिससे धन की कमी की मुश्किल सहज में ही सुलझ गई। इस प्रकार रणजीत सिंह ने अपनी सेना को धन के प्राप्त होने पर बहुत मज़बूत किया।

इसके विपरीत शत्रु पक्ष के शिविर में एक दुर्घटना हो गई। संयुक्त सेनाका कमांडर गुलाब सिंह रात्रि को अधिक नशा करने के कारण मृत पाया गया। इस पर शत्रु पक्ष बिखर गया और उनका संयुक्त मोर्चा सदा के लिए टूट गया।

संयुक्त पँजाबी राज्य

अब रणजीत सिंह ने लाहौर नगर और समस्त क्षेत्र के प्रबन्ध की तरफ विशेष ध्यान दिया। राज्य प्रबन्ध के मामले में केवल योग्यता को ध्यान में रखकर नियुक्तियाँ की गई। इस प्रकार हिन्दुओं,मुसलमानों तथा सिक्खों को, सब को सम्मिलित किया गया। शहर को मौहल्ले में बाँटा गया और प्रत्येक मौहल्ले के लिए चौधरी नियुक्त किया गया। मुसलमानों के झगड़ों के बारे में इस्लामी शरह का प्रयोग करने का आदेश दिया गया। काजी नूरदीन को लाहौर का काजी नियुक्त किया गया और सेंदुल्ला चिश्ती तथा मुहम्मदशाह मुफ्ती सहायक नियुक्त किये गए। नगर में एक सरकारी नि:शुल्क हस्पताल (दवाखाना) खोला गया। जो फकीर अजीज़दीन के भाई हकीम नूरदीन को सुपुर्द हुआ। नगर में शान्ति बनाये रखने के लिए तथा नागरिकों की सुरक्षा करने के लिए पुलिस विभाग बनाया गया, इस कार्यालय में कोतवाल के रूपमें इमाम बख्श को नियुक्त किया गया। स्कूलों (पाठशालाओं, मदरसों) इत्यादि सँस्थाओं को खुले दिल आर्थिक सहायता दी गई। गाँवों में पंचायतें कायम की गई जो कि न केवल झगड़े ही निपटाती थी बल्कि सांझे स्थानीय मामलों का भी प्रबन्ध करती थी। सरकारी कर्मचारियों की अगुवाई (मार्गदर्शन) के लिए जो नियमावली बनाई गई, उनमें सर्वप्रथम नियम यह था कि प्रत्येक राज्यकर्मी का कर्त्तव्य है कि प्रजा (जनता) की भलाई को ध्यान में रखकर कार्य किये जायें ।

इस प्रकार रणजीत सिंह ने अपने क्षेत्र में पँजाबियों का सांझा राज्य कायम किया। उनकी तीव्र इच्छा थी कि सारे पँजाब में ही ऐसा राज्य स्थापित किया जा सके ।

रणजीत सिंह महाराजा की पदवी से सम्मानित

13 अप्रैल, सन् 1801 ईस्वी तदानुसार संवत् 1858 को वैशाखी वाले दिन लाहौर नगर के किले में एक विशाल समारोह का आयोजन किया गया। इस विशाल शाही समारोह में समस्त पँजाब में से बड़े बड़े सिक्ख सरदारों, मुसलमान तथा हिन्दू राजाओं, स्थानीय मुखियों को इस आयोजन में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया। सिक्ख धर्म की मर्यादा अनुसार सर्वप्रथम अरदास की गई और तत्पश्चात् एक शाही दरबार सजाया गया, जिसमें रणजीत सिंह को शाही सिंहासन पर बैठाया गया, तब बाबा साहब सिंह बेदी ने उनको परम्परा अनुसार राजतिलक किया। तभी समस्त अतिथियों की इच्छा अनुसार उनको महाराजा की उपाधि से सम्मानित किया गया ।

नगर के मन्दिरों तथा मस्जिदों में भी उनकी उन्नति के लिए प्रार्थना की गई। नगरवासियों ने बहुत खुशी मनाई। कई दिन तक दीपमाला की जाती रही। इस शुभ अवसर पर एक विशेष प्रकार का सिक्का जारी किया गया, जिसको नानकशाही नाम दिया गया। इस पर फारसी लिपि में गुरू नानक देव तथा गुरू गोबिन्द सिंह जी के नाम अंकित करके अकाल पुरूष की फतह की घोषणा दर्शाई गई। पहले दिन के समस्त सिक्के जो ढाले गये थे, सभी के सभी खैरात में अलग अलग स्थानों पर बाँट दिये गये ।

दरबार साहब के मुख्य भवन में दीपक जलाने के लिए सिक्खों ने अपने प्राणों की आहूतियाँ दी

यह बात उन दिनों की है जब पँजाब के राज्यपाल ज़क्रियाखान ने सन् 1736 - 1737 ईस्वी में शाही काज़ी अब्दुल रहिमान को श्री अमृतसर का कोतवाल नियुक्त कर दिया था। काज़ी अब्दुल रहिमान का विश्वास था कि रामदास सरोवर में सिक्खों के गुरूजनों ने सरोवर के जल में अब - ए - हवात (अमृत) मिला दिया है, जिसे पी कर सिक्ख मृत्यु को प्राप्त नहीं होते

अथवा उन्हें मौत का भय नहीं रहता। अत: उसने श्री दरबार साहब परिसर के चारों दिशाओं में कड़ा पहरा बिठा दिया कि कोई भी सिक्ख सरोवर में स्नान न करने पाये। परन्तु सिक्ख थे कि कोई भय मानते ही नहीं थे, वे तो प्रत्येक चुनौती को स्वीकार करने के लिए जैसे ललायित बैठे रहते थे।

उन दिनों सिक्ख छोटी छोटी टुकड़ियों में दरबार साहब के आसपास मंडराते रहते थे, वे जब कभी सरकारी सैनिकों को ढ़ीलेपन में अथवा गफलत में देखते तो उन पर गौरिला आक्रमण का देते, इस छापामार युद्ध में दोनों तरफ से भारी क्षति होती परन्तु सिक्ख अगले आक्रमण की तैयारी में रहते। इस पर कोतवाल अब्दुल रहिमान ने ज़क्रियाखान से आग्रह करके अपनी सहायता के लिए भारी सेना लाहौर से मंगवा ली। अब सिक्खों ने अपनी नीति बदल ली, वे अंधकार होने पर ही सरोवर के निकट चुपके से जाते और वहाँ डुबकी लगा कर लौट आते। यदि सरकारी सैनिक उनका पीछा करते तो आगे घात लगाकर बैठे सिक्ख उनको रास्ते में ही ढ़ेर कर देते। इस पर शाही सैनिकों ने सिक्खों का पीछा करना छोड़ दिया परन्तु सरोवर पर चौकसी और बढ़ा दी गई। अब सिक्खों ने अमावस की रात को स्नान के लिए चुना, वे मुगल सैनिकों जैसी वेश – भूषा पहन कर घने अंधकार में सरोवर में स्नान करते और उनमें से कोई एक तैर कर श्री दरबार साहब के मुख्य भवन में दीपक जला कर लौट आते। परन्तु कभी कभी रास्ते में तैरते हुए गोली का शिकार बन जाते। बस इस प्रकार यह खेल चलता रहता।

सरदार अघड़ सिंह जी

मोमनखान लगभग 28 वर्ष लाहौर नगर में पँजाब प्रान्त का उप – नवाब नियुक्त रहा। सन् 1725 ईस्वी में जब अब्दुल समद खान का पुत्र जक्रियाखान उसके स्थान पर नवाब नियुक्त हुआ तो मोमन खान को उसने भी वही पद दे दिया जिस पर वह उसके पिता के समय से कार्यरत था। तद्पश्चात ही वह अपने अत्याचारों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त करता गया। वास्तव में वह मानव हृदय रखता ही नहीं था, अति कठोर और करूर प्रवृति का स्वामी होने के कारण जन साधारण उसे दानव कह कर पुकारती थी। सिक्खों से उसे विशेष रूप में बैर था। प्राय: उसे गश्ती सैनिक टुकड़ी का अधिकारी नियुक्त कर दिया जाता और समस्त आसपास

के क्षेत्रों में सिक्खों का शिकार करने भेज दिया जाता। यह गाँव–गाँव सिक्खों की खोज में भटकता रहता। कई संत स्वरूप सिक्ख इसने पकड़ कर उनकी बुरी तरह हत्याएं की। इनमें भाई तारा सिंह 'वां' ग्राम वाले भी सम्मिलित हैं। ठीक इसी प्राकर गाँव पूले के निवासी भाई तारू सिंह जी को इसी मोमन खान ने गिरफ्तार करके उनको बड़ी यातनाएं देकर शहीद करवा दिया था।

नवाब जक्रियाखान पहली जुलाई सन् 1745 ईस्वी को जब मर गया तो उसका पुत्र याहिया खान पँजाब का नवाब बना, उसने भी इसे पहले की तरह अपना नायब सुबेदार नियुक्त कर लिया। मार्च, 1747 ईस्वी में याहिया खान को कैद करके उसका भाई शाह निवाज़ खान सूबेदार बना, तो भी मोमन खान उसका नायब सूबेदार नियुक्त रहा। अप्रैल, 1748 ईस्वी में मीर मंन्नू लाहौर का सूबेदार बना तो भी मोमन खान उसका नायब सूबेदार नियुक्त रहा। इस अवधि में उसने सिक्खों पर अत्यन्त अत्याचार किये। गाँव गाँव में से सिक्ख महिलाओं को पकड़ कर लाने वाला यही मोमन खान ही था।

अक्तूबर, 1751 ईस्वी में मोमन खान लाहौर का सूबेदार बना परन्तु कुछ दिन ही, अन्त में फिर से उसे नये सूबेदार का नायब सूबेदार बनाया गया। शायद मृत्यु के दिन उसके निकट थे, इसलिए उसने निर्दोषों पर अत्याचार करने का कार्यक्रम बढ़ा दिया था। वह गाँव गाँव गश्ती सेना लेकर सिक्खों का शिकार करता फिरता। सैनिक योद्धा सिक्ख तो उसके हाथ नहीं आते थे परन्तु वह असैनिक सिक्ख परिवारों को पकड़ लेता और दिल का क्रोध उन पर निकाल कर खुश होता। इस प्रकार कई सिक्ख सैनिकों के रिश्तेदार मारे गये और उनके घर–बार लूट लिये गये।

मोमन खान के इन अत्याचारों से सिक्खों में भयंकर रौष उत्पन्न हो गया। इन दिनों दल खालसा के अध्यक्ष नवाब कपूर सिंह जी थे। एक दिन उन्होंने किसी विशेष स्थल पर अपने सैनिकों का दरबार लगाया और उसमें घोषणा की कि कोई ऐसा योद्धा है जो नायब सूबेदार मोमन खान का सिर काट कर हमारे समक्ष प्रस्तुत करे।

यह कार्य कोई सहज तो था नहीं, क्योंकि मोमन खान अधिकांश समय मुग़ल फौजों के मध्य में या शाही किले में व्यतीत करता था। इस पर भी सरदार कपूर सिंह की ललकार

सुनकर सरदार अघड़ सिंह उठा और उसने यह चुनौती स्वीकार कर ली और कहा - यदि पंथ मेरी सफलता की प्रार्थना करे तो मैं यह कार्य अवश्य ही पूर्ण करके लौटूँगा।

सरदार अघड़ सिंह सरदार नगाहिया सिंह का सुपुत्र था जो कि शहीद मनी सिंह जी के भाई थे। इस प्रकार अघड़ सिंह मनी सिंह का भतीजा कहलाता था। सरदार अघड़ सिंह का आत्मविश्वास देखकर सभी जवानों से जयघोष करके फतह के नारे बुलन्द किये। सभी लोग अघड़ सिंह की दृढ़ता और वरीता से भली भांति परिचित थे, इस पर जत्थेदार कपूर सिंह जी ने उसे प्रोत्साहित करने के लिए आशीर्वाद दिया।

जैसे सुखा सिंह महिताब सिंह जी ने पंथ के हुक्म को प्राप्त कर मस्से रंगड़ का सिर उतारने की प्रतिज्ञा की थी, ठीक उसी प्रकार अघड़ सिंह जी नायब सूबेदार मोमन खान का वध करने की मन में योजना बनाते हुए लाहौर नगर के लिए प्रस्थान कर गये। मार्ग में उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने अपनी वेश-भूषा एक स्थानीय मलहा जैसी बना ली और रावी नदी के तट पर नौका मालिकों के पास नौकरी करना प्रारम्भ कर दिया ।

सरदार अघड़ सिंह ने सर्वप्रथम अपने मालिकों का मन जीत लिया और धीरे-धीरे उनका विश्वास पात्र बन गया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि एक न एक दिन मोमन खान रावी नदी पार करने के लिए यहाँ अवश्य ही आएगा अथवा अवकाश के समय नौका विहार के लिए तो वह आएगा ही। कुछ दिन के अन्तराल में ऐसा ही हुआ। एक दिन मोमन खान रावी नदी के तट पर सैर के लिए निकला। मोमन खान ने रावी नदी पार करने का मन बनाया, वह साथियों को वहीं छोड़ नौका में बैठ गया। समय की ताक में बैठे हुए अघड़ सिंह ने जब देखा कि यही उचित मौका है, इस समय मोमन खान निश्चिंत है और अकेला भी। तभी उन्होंने बिजली की तीव्र गति से मोमन खान की तलवार उसके म्यान में से खींच कर उसी की गर्दन उतार दी और उसका सिर उठाकर उसी के घोड़े पर सवार होकर क्षण भर में जँगल की तरफ भाग निकले। शाही किले के बहुत ही निकट से रावी नदी बहती है, इसलिए यह कार्य उन्हें करने में कोई अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ी। इस हत्याकांड की सूचना जब तक शाही सैनिकों को मिलती, जोकि उसके साथ आए हुए थे, तब तक सरदार अघड़ सिंह बहुत दूर जा चुके थे और वह वहाँ से अदृश्य होकर अपनी मंजिल के निकट पहुँचने में सफल हो गये।

इस प्रकार सरदार अघड़ सिंह जी अपने उद्देश्य में पूर्णत: सफल होकर लौट आए और उन्होंने मोमन खान का सिर दल खालसा के अध्यक्ष सरदार कपूर सिंह जी के कदमों में रख दिया। इस पर अघड़ सिंह जी को इस वीरता के लिए सरदार कपूर सिंह जी ने अपने आलिंगन में लिया और बहुत स्नेह से उन्हें उनकी सफलता पर बधाई दी और बहुत से अनमोल पुरस्कारों से अलंकृत किया। उनका समस्त पंथ में सम्मान होने लगा। सभी ने जयकारों की गूंज में उन्हें अनेकों बधाईयाँ दीं।

जाबिता खान और सिक्ख

शाह आलम ने शीघ्र ही जाबिता खान का उसके पिता वाले पद 'मीर बख्शी' तथा 'अमीर-उल-उमरा' की उपाधि से सम्मानित कर दिया किन्तु कुछ ही दिनों बाद मराठा सरदार महा जी सिंधिया के भय के कारण जाबिता खान के अवध के नवाब शाह शुज़ा-उद्दौला के यहाँ शरण लेनी पड़ी। जल्दी ही शाह शुज़ा-उद्दौला ने दोनों पक्षों में संधि करवा दी। सन् 1773 ईस्वी में दरबारियों के आपसी मतभेद के कारण बादशाह के सलाहकार अब्दुल अहमद ने अपने भाई कासिम खान को जाबिता खान के स्थान पर सहारनपुर का फौजदार नियुक्त करवा दिया और उसने कासिम खान को जाबिता खान पर आक्रमण करने का आदेश भी दिया। ऐसे संकटकाल में जाबिता खान ने सिक्खों से सहायता की प्रार्थना की। भाई देश सिंह कैथल वाले उसकी सहायता को पहुँचे। फलस्वरूप 4 मार्च सन् 1776 ईस्वी को अब्दुल कासिम खान मारा गया। इस घटना से अब्दुल अहमदशाह आग बगूला हो उठा। उसने अगले वर्ष सन् 1777 ईस्वी में नज़र खान के नेतृत्त्व में जाबिता खान पर भारी शाही सेना गौसगढ़ पर आक्रमण करने पहुँची। इस पर जाबिता खान ने फिर से सिक्खों से सहायता के लिए प्रार्थना की। इस बार शाह आलम भी शाही सेना के साथ था। सिक्ख अपने वचन अनुसार समय पर पहुँचे, घमासान का युद्ध हुआ। इस युद्ध का अधिकांश भार सिक्खों को ही सहन करना पड़ा। दिनांक 8, 11, 13 तथा 23 जून को नज़फ खान ने भारी आक्रमण किये परन्तु सिक्खों ने उसके आक्रमण सभी विफल कर दिये। एक दिन सिक्खों ने कृष्णा नदी को पार करके थाना भवन के निकट मुगल सेना पर धावा बोल दिया, सिक्ख सैनिक पंक्तियों को

चीरते हुए बादशाह के तम्बुओं के समीप पहुंच गए किन्तु मूसलाधार वर्षा के कारण सिक्ख लक्ष्य को प्राप्त न कर सके और लौटने पर विवश हो गये।

मुगल सेना ने विजय की सम्भावना न देखकर कूटनीति का सहारा लिया, तुरन्त संधि करने की पेशकश की। संधि का मसौदा तैयार होने पर सिक्ख वापिस लौट गये। इस पर मुगल सेना नायक नज़फ खान ने छल किया, उसने जाबिता खान के समर्थक उरफजई पठानों को लालच देकर खरीद लिया और 14 सितम्बर को पुन: आक्रमण करके जाबिता खान को परास्त करके गौसगढ़ पर विजय का झंडा लहरा दिया। उन्होंने जाबिता खान के परिवार और उसके साथी सरदारों के परिवारों को पकड़ कर आगरा के किले में कैद कर दिया। तब जाबिता खान किसी तरह जान बचा कर सहायता के लिए जींद के राजा गजपति सिंह के पास शरण लेने पहुँचा। उस समय सिक्खों ने शरणागत जाबिता खान की भरपूर सहायता की। इस आतिथ्य, सेवा एवं मैत्री भाव का उसके मन पर गहरा प्रभाव हुआ। फलस्वरूप जाबिता खान ने अमृत छक लिया और उसका नाम धर्मसिंह रख दिया गया ।

कुछ समय पश्चात् राजा गजपति सिंह व दल खालसा के सेनानायक जस्सा सिंह आहलूवालिया जी ने दिल्ली सम्राट शाह आलम से उसकी संधि करवा ली। परिणामस्वरूप जाबिता खान के सम्बन्धियों को रिहा कर दिया गया और उसे गौसगढ़ तथा लूटा हुआ सारा माल वापिस दे दिया गया ।

जिन दिनों जाबिता खान ने अमृत पान किया उस समय उसका बेटा गुलाम कादर ग्यारह वर्ष का था, भावुकता में उसने भी सिक्खी धारण की, उसका नाम प्यारा सिंह रखा गया। परन्तु पँजाब से लौटने पर उसे सिक्ख वातावरण में जीवन व्यतीत करने अथवा सिक्ख सिद्धान्तों पर आचरण करने का अवसर प्राप्त न हुआ। गुरूमत का उचित ज्ञान न होने के कारण, वह अपने पुराने सँस्कारों का ही प्रदर्शन करता रहा ।

ज़क्रियाखान द्वारा सिक्खों के सफाये की घोषणा

सन् 1741 ईस्वी में पँजाब के राज्यपाल ज़क्रियाखान ने सिक्ख विरोधी अभियानों में भारी सफलता का अहसास किया, उसने दूर-दराज के जन-साधारण सिक्ख नागरिकों के

परिवारों के बच्चों को भी जब पकड़ कर यातनाएं देकर मार डाला तो उसने अपनी सफलता की घोषणा की डींग हांकने के लिए लाहौर नगरवासियों के सामने डोंढ़ी पिटवाना प्रारम्भ कर दिया। डोंढ़ी वाले से घोषणा करवाई की कि उसने पूरे पँजाब क्षेत्र से समस्त केशधारी सिक्खों का सफाया कर दिया है, अब कोई सिक्ख ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा ?इस लम्बी-चौड़ी घोषणा को लोग ध्यान से सुन रहे थे और विचार कर रहे थे कि इस प्रकार के सिक्ख विरोधी अभियान पहले भी बहुत हुए हैं और सफलता की डींगें भी बहुत हांकी गई हैं, परन्तु सिक्ख लोग तो फिर से श्री दरबार साहब को स्वतन्त्र करवाने आ धमकते हैं ।

इस घोषणा के समय एक सिक्ख जिसने वेशभूषा मुगलों की पहनी हुई थी, स्थानीय भड़भूंजे की दुकान से सेवन करने के लिए भुने हुए चने खरीद रहा था, ने ध्यान से सुना। उसे यह घोषणा समस्त सिक्ख जगत के लिए चुनौती मालूम हुई, उसका आत्मगौरव जागृत हो उठा। उसने तुरन्त इस घोषणा को झूठा साबित करने के लिए भड़भूंजें की दुकान से एक खाली कनस्तर उठा लिया और कनस्तर को डंडे से पीटते हुए घोषणा प्रारम्भ कर दी कि हकूमत झूठी है, प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं, मैं सिक्ख हूँ और लाहौर में जीवित घूम रहा हूँ। अत: यह ज़क्रियाखान की सरकार सिक्खों का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती ।

लोग ये दोनों घोषणाएं बहुत आश्चर्य से सुन रहे थे और सरकारी घोषणाओं पर हँस रहे थे। जैसे ही यह व्यंगपूर्ण घटनाक्रम का ज़क्रियाखान को पता चला, उसने तुरन्त बहुत बड़ी संख्या में सैनिक भेजे कि उस सिक्ख को जल्दी ही पकड़ कर मेरे सामने पेश करो, जैसे ही उसको पकड़ने के लिए सरकारी सेना पहुँची, उस सिक्ख ने कनस्तर फैंक कर म्यान से तलवार निकाल ली और शत्रुओं का सामना करते हुए शहीद हो गया ।

सिक्खों की सांकेतिक भाषा

ज़क्रियाखान द्वारा सिक्खों पर लगाए सरकारी प्रतिबन्ध के कारण, सिक्ख जत्थे बनाकर नगरों से दूर ही रहने लगे परन्तु उन्हें रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुओं के लिए कभी कभार विवशता में नगरों में आना भी पड़ता था। ऐसे में वे अपनी वेश-भूषा मुग़ल फौजियों जैसी रखते थे। उन की बात-चीत का अर्थ भेदिये न जान पाये इस लिए उन्होंने अपनी भाषा

को सांकेतिक रूप दे दिया। भाई मनी सिंह जी की शहीदी के पश्चात् इस सांकेतिक भाषा का सिक्खों में खूब विकास हुआ परन्तु सिक्खों की बाहरा सिसलों के अस्तित्व में आ जाने से धीरे-धीरे इस सांकेतिक भाषा की आवश्यकता समाप्त हो गई। अत: सिक्ख सैनिक इसे भूलने लग गये परन्तु निहंग सिंहों में अभी भी कुछ एक शब्द प्रचलन में हैं, जो आज भी 'खालसे के बोले' के नाम से प्रसिद्ध हैं और इन शब्दों का बहुत आदर से प्रयोग होता चला आ रहा है। उदाहरण के लिए जैसे -

उजागरी	=	दीपक अथवा लालटैन
अकलदान	=	सोटा या डंडा
अकाशपरी	=	बकरी
अकासी दीपक	=	सूर्य अथवा चन्द्रमा
अथक सवारी	=	जूता
अडंग बडिंग होना	=	लेटना अथवा सो जाना
आहू लुहाने	=	व्यक्ति को टुकड़े करके हत्या करनी
आकड़ भंन	=	बुखार से रोगग्रस्त होना
आनंदपूर्ण	=	भोजन करने उपरान्त तृप्त होना
आकी होना	=	जेल में कैद होना
अंगीठा	=	चिता, चिखा
अंधा	=	देशद्रोही अथवा मूर्ति पूजक
अमृत बेला	=	प्रात:काल, सूर्य उदय से पूर्व का समय
इकटंगी बटेरा	=	बैंगन
सज जाना	=	तैयार होना
सदा गुलाब	=	कीकर, बबूल
सब्ज पुलाव	=	साग
शब्ज मन्दिर	=	वृक्ष के नीचे निवास स्थल
समुन्द्र	=	दूध
सरब रस	=	नमक, लून

सवाया	=	थोड़ा, कम
सवा लाख	=	एक
सवा लाख फौज	=	एक सैनिक योद्धा (सिक्ख)
स्योगी	=	हरा छोलिया
साकत	=	गुरू से बेमुख व्यक्ति (पतित)
सिंहनी	=	अमृतधारी स्त्री, महिला
सिर गुम	=	सिक्ख घराने का केश रहित व्यक्ति
सिर घसा	=	अन्य समुदाय के व्यक्ति
सिर जोड़	=	मुड़
सुजाखा	=	ज्ञानी व्यक्ति
सुन्दरी	=	झाड़ू
सूबेदार	=	सफाई कर्मचारी
सुरमा	=	अंधा
सेव	=	बेर
श्री साहब	=	तलवार
हरन होना	=	युद्ध नीति अनुसार भाग जाना
हरा करना	=	किसी वस्तु को प्रयोग के लिए तैयार करना
हीरा	=	सफेद केश अथवा बाल
होला-महल्ला	=	दो सैनिक टुकड़ियों द्वारा युद्ध अभ्यास करना अथवा आपस में नकली युद्ध करना
कच्चा पिल्ला	=	सिक्ख रहित मर्यादा को ठीक से पालन न करने वाला व्यक्ति
कट्टा	=	हाथी
कड़ाका	=	भूखा
काज़ी	=	मुर्गा
काना	=	तुर्क, मुस्लिम
कुट्ठा	=	हल्ला माँस मुसलमानों द्वारा काटा गया जीव

कुणका	=	प्रसाद का अंशमात्र
कुतबद्दीन	=	कुत्ता
कुड़ीमार	=	कन्या का वध करने वाला
केसर	=	हल्दी
कोतवाल	=	चाकू
खस्सी फौज	=	महिलाओं का दल
खजूर	=	कंदमूल फल
खार समुन्द्र	=	लस्सी
खण्ड	=	राख, भस्म
गहरा गफा	=	युद्ध में से प्राप्त धन
गधी चुंणी	=	तम्बाकू सेवन करना
गफफे लगाउणें	=	स्वादिष्ट भोजन करना
गढ़ तोड़ना	=	विजय प्राप्त करनी
गुद्दड़	=	दूध की मलाई
गुप्ता	=	गूंगा
गुरमता सोधना	=	विचार गोष्टि द्वारा निर्णय करना
घल्लूघारा	=	भयंकर युद्ध में विनाश का समय
घाण होना	=	जानी नुक्सान होना
घाला – माला	=	उचित निर्णय के बिना क्षमा करना
घोड़ा दौड़वाना	=	मैथुन (भोग) करना
चढ़दी कला	=	उन्नति करना उत्साह अथवा उमंग का समय
चढ़ाई करना	=	प्राण त्याग देने
चूना	=	आटा
चोबारे चढ़िया	=	बोला, बहिरा
छिल्लड़	=	चाँदी के सिक्के अथवा धन
जहाज़	=	बैलगाड़ी

जहाज़ चढ़ना	=	अमृत धारण करना
जगत जूठ	=	तम्बाकू
जल तोरी	=	मछली
जँगल जाना	=	शौचालय जाना
ठीकरा	=	शव
तनखाह लगानी	=	धार्मिक दंड देना
थानेदार	=	गधा
दमड़ा	=	सिक्का
देग तैयार	=	लंगर तैयार
निशान साहब	=	झंडा, ध्वज (केसरी)
प्रसादा	=	रोटी
पंचामृत	=	कड़ाह प्रसाद
पंच स्नान	=	हाथ मुँह धोना
पंमा	=	ब्राह्मण
बादाम	=	चने
महाप्रसाद	=	झटका माँस का भोजन
रूपा	=	प्याज़
लखनेत्रा	=	काना
लड़ाकी	=	लाल मिर्ची
लंगर मस्ताना	=	अनाज की कमी के कारण भोजन न तैयार होना
वहीर	=	सिक्ख सैनिकों के परिवार

भाई काहन सिंहनाभा जी द्वारा रचित महान कोष में 'सिंहों के बोले' अर्थात सांकेतिक शब्द की एक विस्तृत सूची है, जिसे यहाँ नमूने के रूप में दिया गया है ।

समाप्त